

वैदिक गृह्यसूत्रोंमें संस्कारीय सदाचार

(डॉ० श्रीसीतारामजी सहगल 'शास्त्री', एम० ए०, ओ० एल०, पी-एच० डी०)

प्राचीन भारतमें अन्तर्हृदयकी ग्रन्थियोंको सुलझाने तथा भगवत्प्राप्तिके लिये व्यक्तिका जन्मसे लेकर मृत्युतकका जीवन संस्कारोंसे संस्कृत होता रहता था। इसकी ध्वनि वेदसे ही सुनायी देती है। वेदोंका गृह्यसूत्र-साहित्य अपने-आपमें बड़ा व्यापक है, जिसका कारण हमारे देशके विस्तृत भूभाग, विविध भाषाएँ, विविध धर्म तथा विविध जातियोंकी आचार-धाराएँ रही हैं। आचार-विविधताओंके कारण अनेक गृह्यसूत्रोंकी रचना युक्तिसंगत ही प्रतीत होती है।

ऋग्वेदके तीन गृह्यसूत्र हैं—आश्वलायन, शांखायन तथा कौषीतकि। शुक्लयजुर्वेदके दो गृह्यसूत्र हैं—पारस्कर और वैजवाप। कृष्णयजुर्वेदके बौधायन, भारद्वाज, आपस्तम्ब, हिरण्यकेशीय, वैखानस, अग्निवेश्य, मानव, काठक तथा वाराह—ये नौ गृह्यसूत्र हैं। सामवेदके—गोभिल, खादिर तथा जैमिनि—ये तीन गृह्यसूत्र हैं। अथर्ववेदका कोई गृह्यसूत्र नहीं है, उसका केवल वैतानकल्पसूत्र या कौशिकसूत्र प्रसिद्ध है, जिसमें गृह्यसूत्रादिके सभी कर्म निर्दिष्ट हैं।

हम यहाँ ऋग्वेदीय शांखायन गृह्यसूत्रके प्रधान कर्मोंकी सूची उद्धृत करते हैं, जिससे सब संस्कारोंका परिचय सम्भव हो सकेगा। उदाहरणार्थ—स्वाध्यायविधि (१। ६), इन्द्राणीकर्म (१। ११), विवाहकर्म (१। १२), पाणिग्रहण (१। १३), सप्तपदक्रमण (१। १४), गर्भाधान (१। १९), पुंसवन (१। २०), सीमन्तोन्ययन (१। २२), जातकर्म (१। २४), नामकरण (१। २५), चूडाकरण (१। २८), उपनयन (२। १), वैश्वदेवकर्म (२। १४), समावर्तन (३। १), गृह्यकर्म, प्रवेशकर्म (२, ३, ४), श्राद्धकर्म (४। १), उपाकरण (४। ५), उपाकर्म (४। ७), सपिण्डीकरण-कर्म (४। ३१), आध्युदयिक श्राद्ध-कर्म (४। ४), उत्सर्गकर्म (४। ६), उपरमकर्म (४। ७), तर्पण (४। ९) और स्नातकधर्म (४। ११)—ये संस्कार सत्ययुगसे लेकर भगवान् राम, कृष्ण एवं हर्षवर्धनके समयतक जीवन्तरूपमें रहे। महाकवि कालिदासने इनमेंसे कुछ संस्कारोंकी

चर्चा अपने ग्रन्थोंमें की है; जैसे—पुंसवन (कुमारसम्भव ३। १०), जातकर्म (रघुवंश ३। १८), नामकरण (रघु ३। २१), चूडाकरण (रघु ३। २८), उपनयन (कुमार ३। २९), गोदान (रघु ३। ३), विवाह (कुमार ६। ४९), पाणिग्रहण (रघु ७। २१), दशाह (रघु ७। ७३)। संस्कारोंके इस वर्णनसे यह भलीभाँति प्रमाणित हो जाता है कि राजासे रंकतक—सबकी परम्परागत इन कर्मोंमें श्रद्धा होती थी। यही कारण है कि भारतमें समय-समयपर होनेवाले आक्रमणकारियोंके बर्बरतापूर्ण आक्रमण निष्फल रहे। ये थीं हमारे पूर्वजोंकी अमर योजनाएँ, जिन्होंने देशको अखण्डित तथा हमें स्वाधीन बनाये रखा और जिनके द्वारा संस्कृत होनेके कारण हम सब एकतामें आबद्ध रहे।

गृह्यसूत्रोंमें आश्रमोंकी व्यवस्थाका व्यापकरूपसे वर्णन मिलता है। ब्रह्मचर्य, विवाह और वानप्रस्थ—ये तीन आश्रम व्यापकरूपसे समाजमें प्रचलित रहे। 'तैत्तिरीयसंहिता' के एक मन्त्रमें प्रकारान्तरसे इनसे सम्बद्ध तीन ऋण कहे गये हैं—'जायमानो ह वै ब्राह्मणस्त्रिभिर्घणवान् जायते। ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यो यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्य एष वा अनृणो यः पुत्री यज्ञा ब्रह्मचारिवासी' (६, ३, १०, १३) अर्थात् 'जब ब्राह्मण पैदा होता है तो उसपर तीन ऋण लदे रहते हैं। ऋषि-ऋणके अपाकरणके लिये ब्रह्मचर्यव्रत (शिक्षा), देव-ऋण देनेके लिये यज्ञ (समाज) तथा पितृ-ऋणसे मुक्तिके लिये वह श्रेष्ठ परिवारमें विवाह करता है।' 'शांखायनगृह्यसूत्र' के उपनयन-संस्कारमें तीन वर्णोंकी अवधिका उल्लेख है, जो इस प्रकार है—'गर्भाष्ट्रेषु ब्राह्मणमुपनयेत्' (२। १), 'गर्भेकादशेषु क्षत्रियम्' (२। ४)। 'गर्भद्वादशेषु वैश्यम्' (२। ५), 'आ षोडशाद् वर्षाद् ब्राह्मणस्यानतीतकालः' (२। ७), 'आ द्वाविंशतात् क्षत्रियस्य' (२। ७), 'आ चतुर्विंशताद् वैश्यस्य' (२। ८)। अर्थात् 'गर्भाधान-संस्कारके बाद आठवे वर्षमें ब्राह्मणका, ग्यारहवें वर्षमें क्षत्रियका तथा बारहवें वर्षमें वैश्यका

उपनयन-संस्कार करे। विशेष कारणवश इस अवधिमें न होनेपर ब्राह्मणके संस्कार सोलह वर्षतक, क्षत्रियके बाईस वर्षतक और वैश्यके चौबीस वर्षतक करनेकी बात कही गयी है। यदि तीनों वर्ण इस अवधिके बीच अपना संस्कार सम्पन्न नहीं कर लेते थे तो वे उपनयन, शिक्षा तथा यज्ञके अधिकारोंसे वञ्चित समझे जाते थे।'

आजके युगमें भी शिक्षाको राज्यकी ओरसे अनिवार्य बनानेकी योजना उसी प्राचीन महनीय परम्पराकी ओर संकेत करती है। उपर्युक्त उद्धरणसे यह स्पष्ट हो जाता है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य अर्थात् पचहत्तर प्रतिशत लोग उस युगमें शिक्षित ही नहीं होते थे, अपितु वे राष्ट्रमें संस्कृत या संस्कारवान् कहलानेके अधिकारी भी होते थे। वर्णाश्रम-व्यवस्था भारतीय जीवनका मेरुदण्ड था। यह हमारे जीवनके उत्कर्षकी ध्वजा समझी जाती थी। कुछ आधुनिक शिक्षाके आलोकमें अपनेको प्रबुद्ध माननेवाले भ्रान्तलोग इस व्यवस्थाको हमारी सात सौ वर्षोंकी गुलामीका कारण बतलानेका साहस करते हैं। किंतु प्राचीन कालमें जितने भी शक, हूण आदि विदेशी जातियोंके आक्रमण हुए उनसे सुरक्षित रखनेकी क्षमता इसी वर्णव्यवस्थामें थी। इस वर्णाश्रमधर्मको माननेवालोंमें स्वधर्मके प्रति गर्व और गौरवकी भावना इतनी अधिक थी कि वे दूसरोंकी अपेक्षा अपनेको श्रेष्ठ समझते थे।

पाश्चात्य चिन्तकोंने अपने ग्रन्थोंमें हृदय खोलकर इस उत्कर्षके लिये भारतीयोंकी प्रशंसा की है। सिडनीने

अपने ग्रन्थ 'भारतीय अन्तर्दृष्टि' में कहा है कि 'हिन्दुओंने विदेशी आक्रमणों तथा प्राकृतिक प्रकोपोंका सामना करनेमें जो शक्ति दिखलायी है, उसका कारण उनकी अजस्त, अमर और अजर वर्णाश्रमधर्मकी व्यवस्था है।' इसी तरह सर लारेन्सने अपनी पुस्तक 'भारतीय चिन्तन'में लिखा है—'हिन्दुओंकी जातीय प्रथाने संघका काम किया है, जिससे उसे शक्ति मिली है और उसने विभिन्न वर्णोंको सुसंगत रखा है।' गार्डनरने भी अपनी पुस्तक 'समाजके स्तम्भ' में लिखा है—'वर्णाश्रमधर्मने भारतीय विश्वास तथा परम्पराओंको जीवन्त रखा है।' पश्चिममें आदर्शोंके स्थानपर धन-दौलतको आधार माना गया है, जो बालूकी दीवारकी तरह अस्थिर है।

पर हमारे यहाँ आचार्योंका समाजमें ही नहीं, अपितु राष्ट्रभरमें आचारसे ही आदर होता था। वे आचरणके क्षेत्रमें उदाहरणीय-अनुकरणीय व्यक्ति समझे जाते थे। इसासे आठ सौ वर्ष पूर्व भगवान् यास्कने अपने ग्रन्थ 'निरुक्त'में आचार्यका निर्वचन करते हुए लिखा था—'आचार्यः कस्मात्? आचिनोत्पर्थन्, आचिनोति बुद्धिमिति वा।' (१।४)—अर्थात् 'आचार्य किसे कहते हैं?—जो शिष्यको सदाचरण सिखलाता है अथवा शिष्यको सूक्ष्म-से-सूक्ष्म पदार्थोंको समझा देता है।' गृह्यसूत्रोंका तात्पर्य संस्कारके संनिदेशसे है। इहीं संस्कारोंके कारण सप्ताह तपस्वियोंके चरण छूकर अपने जीवनको धन्य मानते थे और क्षत्रसे ब्रह्म पूज्यतर समझा जाता था।